

सम्पादकीय

कितना बदल गया इन्सान?

संसार की हालत सचमुच ही खराब हो गयी लगती है। आदमी वही काम करना चाहता है, जिस काम को करने से उसे रोका जाता है। यह तो वैसी ही बात हो गयी जैसे शुगर के मरीज को डॉक्टर मीठा खाना बन्द करने को कहे और वह डॉक्टर की चेतावनी को अनदेखा करके मीठा खाता रहे। इससे डॉक्टर को तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मीठे के व्यापारी को भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन मरीज जल्दी मर जायेगा।

मनुष्य को धोखा, छल, हिंसा, अनाचार, वैर, द्वेष आदि से बचने के लिए सदा से कहा जाता रहा है लेकिन वह रुक ही नहीं रहा। एक दुकानदार ज्यादा लाभ कमाने के लिए खाद्य पदार्थों में मिलावट करता है। दूध में ज्यादा पानी मिलाता है। जरूरत पड़ने पर गन्दा पानी भी मिला देता है। कम कीमत की वस्तु के ज्यादा दाम वसूलता है ताकि ज्यादा लाभ हो। सोचता कुछ और है, कहता कुछ और है, करता कुछ और ही है। शक्तिशाली के सामने हाथ जोड़ लेता है, उसके अन्याय को भी सहन कर जाता है, कमजोर को दबाने के लिए सहनशीलता सबसे पहले भूलता है और हाथापाई पर उतर जाता है और मन में वैर पालता रहता है। ईर्ष्या व द्वेष तो तरक्की के आधार माने जा रहे हैं।

ऐसी हालत में सहज ही स्व. गीतकार प्रदीप की ये पंक्तियाँ जहन में गूँजने लगती हैं—

देख तेरे संसार की हालत क्या हो गयी भगवान,

कितना बदल गया इन्सान।

सूरज ना बदला, चाँद ना बदला, ना बदला रे आसमान,

कितना बदल गया इन्सान.....

मैंने कई बार यह गीत सुना। गीत में बतायी गयी पूरी परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर पाया कि गीतकार ने ये पंक्तियाँ अब से पचास वर्ष से भी पहले लिखी हैं लेकिन आज की परिस्थितियों में भी ये पंक्तियाँ खरी उतरती हैं। साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर गीतकार ने लिखा है—

राम के भक्त रहीम के बन्दे, रचते आज फरेब के फन्दे,

कितने ये मक्कार ये अन्धे, देख लिये इनके भी धन्धे,

इन्हीं की काली करतूतों से हुआ ये मुल्क मसान.....

आँकड़े बताते हैं कि विभिन्न युद्धों में इतने लोग नहीं मरते, जितने कि साम्प्रदायिक हिंसा में मरते हैं। विभिन्न धर्मों के नामों पर खड़े किये गये गुटों के लोग अपने-अपने गुटों के सम्मान के नाम पर आध्यात्मिक सिद्धान्तों को भूलकर हिंसा पर उतर जाते हैं। शहर के शहर तबाह हो जाते हैं। शान्तिप्रिय लोग ऐसी हालत देखकर धर्मों से तोबा करने लगते हैं। मजबूरन लोग नास्तिक हो जाते हैं। मुझे लगता है कि उनके नास्तिक होने का दोष आस्तिकों की अधार्मिकता पर है। जब भी कर्मकांड अध्यात्म पर हावी हो जाता है, आध्यात्मिकता लुप्त हो जाती है।

आगे कवि ने कहा है—

आया वक्त बड़ा बेढंगा, आज आदमी बना लफंगा,

कहीं पे झगड़ा, कहीं पे दंगा, नाच रहा नर होकर नंगा।

छल और कपट के हाथों अपना बेच रहा ईमान—

कितना बदल गया इन्सान.....

कवि ने लिखा है कि आदमी बदल गया है। समय ही बेढंगा है, आदमी वह सब कर रहा है,

जो उसे नहीं करना चाहिए। छल-कपट के लिए वह ईमान बेच रहा है।

अगर इतिहास को देखें तो ऐसी परिस्थितियाँ हमेशा ही रही हैं। त्रेता युग में रावण ने छल-कपट का सहारा लेकर सीता जी का अपहरण किया। द्वापर युग में कौरवों ने लाक्षागृह निर्मित करके छल से पांडवों को खत्म करने की कोशिश की। मुगल काल में तो सिंहासन के लिए भाई, भाई की हत्या करने से भी नहीं चूकता था। औरंगजेब ने तो अपने पिता को ही कैद कर लिया था। अंग्रेज भी कम नहीं थे। शहीद भगत सिंह को जान-बूझकर फाँसी दी जब कि उन्होंने बम फेंका जरूर था लेकिन फेंका ऐसी जगह था, जहाँ किसी की प्राण-हानि न हो। कोई हताहत नहीं हुआ इसके बावजूद भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दे दी गयी और नियत दिन से एक दिन पहले।

ऐसा लगता है कि छल-कपट हर युग में कायम रहा है। आज भी यह छल-कपट कायम है तो स्पष्ट है कि आदमी ने अपनी चाल-ढाल नहीं बदली है। वह वैसा ही निम्न कोटि का है, जितना कि पहले था।

कवि यदि आदमी के बदलने की शिकायत कर रहा है तो उसका मूल यह है कि वह सोचता है कि मानव में यदि मानवता नहीं है तो वह मानव नहीं है। यदि उसमें मानव के मूल गुण(प्रेम, सहनशीलता, विशालता, सद्भाव, दया, क्षमा आदि) नहीं हैं तो वह बदल गया है, क्यों कि उसने प्रेम के स्थान पर वैर को, सहनशीलता के स्थान पर लड़ाई को, विशालता के स्थान पर संकीर्णता को, सद्भाव के स्थान पर शत्रुता को, दया के स्थान पर कठोरता को और क्षमा के स्थान पर क्रोध को अपना लिया है।

इसके विपरीत यदि पिछले 50-55 वर्षों के इतिहास को देखें तो आदमी आज भी वैसा ही है, जैसा 50-55 वर्ष पहले था। इस बीच गाँधी जी ने सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि का संदेश दिया। स्वतन्त्र भारत की सरकार ने अनेकों ऐसे कानून बनाये जिनसे मानव में समानता आये। जाति के आधार पर भेद-भाव के विरुद्ध कानून बने, शिक्षा को अधिकार बना दिया गया। कोशिश की गयी कि मानव सहज भाव से स्वतन्त्रता का आनन्द ले लेकिन सच्चाई यह है कि हम भारतीय मात्र उस कानून को मानते हैं जिसके न मानने से भारी सजा हो सकती है अन्यथा हम लोग दुपहिया वाहन चलाते समय हेलमेट तक पहनने से बचते हैं जब कि उसमें हमारा अपना सिर सुरक्षित रहता है। ऐसे में कोई कानून कितना कारगर होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है। आजादी के नाम पर हम लोग(न्याय के नाम पर) अन्याय करने से भी नहीं हिचकते और बेशर्मी से कहते हैं कि सब चलता है। अनुशासन के चिराग के नीचे उच्छृंखलता और भ्रष्टाचार दोनों का अंधेरा आश्रय पा रहा है, इस आधार पर लगाता है कि आधी सदी से भी ज्यादा के इतिहास से मनुष्य ने कुछ भी नहीं सीखा। उसकी रुचियाँ अब भी वही हैं जो कि आधी सदी पहले थीं। साम्प्रदायिक हिंसा अब भी होती है। साम्प्रदायिक भावनाएं अब भी ज्यों की त्यों हैं। यहाँ तक कि अलगाववाद की जड़ें भी खत्म नहीं हुई हैं। जातिवाद भी कम नहीं है। गुरु-पीर-पैगम्बरों की पावन वाणी का पठन-पाठन पहले भी होता था आज भी हो रहा है। जिन सिद्धान्तों को हमें व्यवहार में लाना था उसे हमने परम्परागत रूप से पूजा का विषय बनाकर कर्मकांड के रूप में सीमित कर दिया है। यह एक विडम्बना है। वैदिक मानव के कार्यव्यवहार व मानवता की दृष्टि से देखें तो आदमी बहुत बदल गया है लेकिन पिछले पचास-साठ वर्षों के इतिहास को देखें तो आदमी बिल्कुल भी नहीं बदला है, जब कि उसे बदलना चाहिए। दानवता के स्थान पर मानवता को, क्रोध के स्थान पर क्षमा को और वैर के स्थान पर दया को प्रतिष्ठित करना चाहिए तभी मानवता की दृष्टि से हम मानव होने का दावा कर सकते हैं।

— राम कुमार 'सेवक'
rksewak@yahoo.co.in